दूसरे अध्याय में जीवात्मा और उसके प्राकृत देहबन्धन के प्राथमिक ज्ञान का वर्णन किया गया। 'बुद्धियोग' अर्थात् 'भक्तियोग' द्वारा इस भवबन्धन से मुक्त होने की पद्धति का भी वहाँ निरूपण है। तीसरे अध्याय में कहा है कि ज्ञानी के लिये कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रहता। चौथे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि ज्ञान सम्पूर्ण यज्ञों का पर्यवसान है। पर फिर अध्याय के अन्त में अर्जुन को आज्ञा दी कि वह सचेत हो जाय और पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर युद्ध करे। इस प्रकार भक्ति-भावित कर्म तथा ज्ञानयुक्त अकर्म के महत्त्व पर एक साथ बल देकर मानो श्रीकृष्ण ने अर्जुन को द्विविधा में डाल कर उसके संकल्प को सम्भ्रमित कर दिया। अर्जुन समझता है कि ज्ञानमय संन्यास का अर्थ इन्द्रियक्रिया के रूप में किए जाने वाले सब कर्मों का परित्याग है। परन्तु यदि भक्तियोग में कर्म करना है तो कर्मत्याग कैसे होगा? भाव यह है कि अर्जुन के विचार से ज्ञानयुक्त संन्यास के लिये कर्म-सम्पादन से बिल्कुल मुक्त होना चाहिये, क्योंकि उसे कर्म और ज्ञान असंगत से लगते हैं। अर्जुन की इस जिज्ञासा से स्पष्ट है कि वह इस तथ्य को समझ पाने में असफल रहा है कि पूर्ण ज्ञान के साथ किया गया कर्म बन्धनकारी न होने से अकर्म के ही तुल्य है। अतएव उसकी जिज्ञासा है कि आत्मकल्याण के लिए वह सब प्रकार से कर्मत्याग कर दे अथवा पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर कर्म करे।

12/५

श्रीभगवानुवाच।
संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।२।।

श्रीभगवान् उवाच=श्रीभगवान् ने कहा; **संन्यासः**=कर्मों का संन्यास; **कर्म-योगः**=भक्तिभावित कर्म; **च**=और; **निःश्रेयसकरौ**=कल्याणकारी हैं; **उभौ**=दोनों ही; **तयोः**=उन दोनों में; **तु**=किन्तु; **कर्मसंन्यासात्**=कर्म को त्यागने की तुलना में; **कर्मयोगः**=भक्तिभावित कर्म; **विशिष्यते**=विशेष उत्तम है।

अनुवाद

श्रीभगवान् ने कहा, कर्मों का संन्यास और भक्तिभावित कर्मयोग दोनों ही कल्याणकारी हैं। परन्तु इन दोनों में भी, भक्तिभावित कर्मयोग कर्मसंन्यास से श्रेष्ठ है।।२।।

तात्पर्य

इन्द्रियतृप्ति के लिए की जाने वाली सकाम क्रियाओं से भवबन्धन होता है। जब तक जीव शारीरिक सुख के लिए क्रियाओं में प्रवृत्त है, तब तक विविध योनियों में उसका देहान्तर मिट नहीं सकता। इस प्रकार भवबन्धन सदा बना रहेगा। यह श्रीमद्भागवत से भी प्रमाणित है:

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्मः यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः।।